

सन् 1976 से लेकर सन् 2016 तक की अवधि में फर्श से अर्श तक यानी छतरपुर जैसे छोटे से शहर से लेकर मुंबई, पुणे जैसे केन्द्रों पर कार्य करने का अवसर मिला। आकाशवाणी के लिए कहा जा सकता है -

हजार पतझड़ के बावजूद,  
में अब भी, वहीं हूं  
मेरी आंखों में वसन्त है,  
सूखी बाहों में  
बल अनन्त है।

और इस बात की पुष्टि आकाशवाणी और विविध भारती से प्रसारित होने वाले अनेक कार्यक्रमों से होती है। एफ.एम. चैनल्स की भीड़ और टी.वी. चैनल्स की बाढ़ (भाड़) में भी एक 'अर्थहीन प्रसन्नता' की जगह एक 'अर्थवान प्रसारण' करने का प्रयास आकाशवाणी और विविध भारती कर रही है। भाषा का संस्कार जो आकाशवाणी और विविध भारती के पास है, वो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता 'सरलता' का आग्रह केवल हिन्दी को लेकर ही किया जाता है, अन्य भाषाओं के संदर्भ में यह आग्रह उतना नहीं है, कारण कुछ भी हों, सब तो यह है कि कोई भी भाषा कठिन या सरल नहीं होती, उसका प्रयोग और परिवेश ही उसे सरल और कठिन बनाता है। अपने ही एक अनुभव पर चर्चा करना यहां प्रासंगिक होगा।

मेरे रूपक संग्रह 'मोहन से महात्मा' की भाषा के संदर्भ में एक मित्र ने कहा कि 'कुछ रूपकों की भाषा' 'ग्रंथिक' (पुस्तकीय) लगती है तब अन्य मित्र का जवाब था, "दरअसल आप महाराष्ट्र से बाहर नहीं गए हो, मध्यप्रदेश में तो यह वहां की सहज भाषा है।"

मेरा अपना मानना है कि भाषा विषय के अनुरूप होनी चाहिए, किसी खेल के संदर्भ की भाषा अलग होगी, और साहित्य, संस्कृति से संदर्भित कार्यक्रमों की भाषा अलग होगी, या कहें कि होनी चाहिए।

संस्कृति विषय रूप की भाषा का उदाहरण-

- श्लोक के पाद- उद्घोषक का स्वर-

वाणी का पर्व है वसन्त, सरस्वती का उत्सव है वसन्त, नाद का सम है वसन्त, प्रकृति का उत्कर्ष है वसन्त और ऋतु का उन्माद है वसन्त।

-अब एक उदाहरण फिराक गोकखपुरी पर केन्द्रित रूपक का-

-निवेदक का स्वर (ए) फिराक गोरखपुरी जो आज ग़मेफिराक है, लेकिन हर दिल आज जुदाई के इस गुमा

आरंभ से ही ऐसे अधिकारी मिले जो भाषा साहित्य : प्रसारण सभी दृष्टि से समृद्ध थे। कार्य के प्रति समर्पित थे, उनके ही संस्कारों का फल और बल था कि तमाम अन्तर्विरोधों, उलझनों के बाद भी कार्यक्रमों को लेकर कोई टालमटोल या समझौता नहीं किया। रेडियो एक क्षणजीवी माध्यम है, एक बात रेडियो से बोली जाए तो हम पाते हैं कि प्रसारण के साथ ही शून्य में विलीन हो जाती है। यहां पलटकर पूर्व संदर्भ देखने की सुविधा या गुंजाइश इसलिए नहीं है और न ही कुछ ठहरकर सोचने का अवसर। इसलिए रेडियो या श्रव्य माध्यम में शब्द प्रधान है, शब्द ही उसका अर्थ है, उसमें 'अर्थात्' कुछ नहीं होता। क्यों कोई ऐसा शब्द बोला जाए जिसके कोई अन्य मतलब भी निकलते हों यहां संदेह के लिए भी कोई स्थान नहीं- कहा जाता है, 'इफ देयर इज़ ऐनी डाउट, वुड बी आऊट।'

इन तत्वों का अनुपालन अब थोड़ा कमजोर हुआ सा जान पड़ता है, कारण, आकाशवाणी पर प्रायोजित कार्यक्रमों का प्रसारण। एक उदाहरण पुणे केन्द्र का ही, प्रायोजित कार्यक्रम में वक्ता ने कहा- "हम सब जानते हैं कि वाल्मिकी जी बोलते गए और गणेश ने रामायण लिखी।" इस पर अधिक कुछ न कहा जाए, यही उचित है।

अक्टूबर 1957 में आकाशवाणी में एक नए युग का आरंभ हुआ था, जब संगीत पर आधारित विविध भारती सेवा शुरू हुई। यह अखिल भारतीय प्रसारण सेवा है। इसलिए कुछ क्षेत्रीय अंतरों की छोड़कर लगभग एक ही तरह के कार्यक्रम सभी विविध भारती केन्द्रों से प्रसारित होते हैं। एक नवम्बर 1967 से विज्ञापनों के प्रसारण की शुरुआत हुई। प्रारंभ में विज्ञापनों के संबंध में अनेक सावधानियां बरती गईं। 'कमर्शियल कोड' भी है, लेकिन धीरे-धीरे उसकी पकड़ कमजोर पड़ती गई। केन्द्रों को दिए गए अव्यवहारिक 'राजस्व अर्जन' के 'टारगेट' ने प्रसारण का 'टारगेट' (लक्ष्य) विचलित कर दिया।

मेरा ये सौभाग्य  
रहा कि सेवा के  
आरंभ से ही ऐसे  
अधिकारी मिले जो भाषा  
साहित्य : प्रसारण सभी  
दृष्टि से समर्पित थे,  
उनके ही संस्कारों का  
फल और बल था कि  
तमाम अन्तर्विरोधों,  
उलझनों के बाद भी  
कार्यक्रमों को लेकर  
कोई टालमटोल या  
समझौता नहीं किया।

को अपने में बसा लेना चाहता है, उसकी बात करना चाहता है, उसे याद करना चाहता है,

(बी) एक ऐसी शिखरियत जिसमें हर खास ओ आम की बेचैनी और दर्द समया हुआ है, जो इसानियत से बड़ी मुहब्बत करती है। .....

इन उदाहरणों से शायद आप सहमत हों। मेरा ये सौभाग्य रहा कि सेवा के